Chanda Rani
E-Mail ID:- chandarani911@gmail.com

E-Content

Programme:-Master in Sociology

SEMESTER II

Postgraduate Department Of Sociology

Patna University, Patna

Compulsory Paper:- C.C. 8(Urban Sociology)

Unit V:- Urbanism and Urbanization

Urban Planning: Meaning and Historical Perspective:-

नगर नियोजन :-

नगर नियोजन (अंग्रेज़ी:Urban planning) नगरीय क्षेत्रों में भूमि उपयोग नियंत्रण एवं नगरीय परिवेश के डिज़ाइन से संबंधित एक तकनीकी और राजनैतिक प्रक्रिया है। किसी भी नगर के विकास और निर्माण के लिए उसे योजनाबद्ध ढ़ंग से बसाना या उसका विकास करना ही नगर नियोजन है।

अतीत साक्षी है कि भारत में शहर और गाँवों का नियोजन कितना व्यवस्थित होता था। शहर और ग्रामों के व्यवस्थित नियोजन के ही कारण भारत विकास के चरमोत्कर्ष तक पहुँच सका था। नियोजकों ने मस्तिष्क में इन समस्त बातों का भरपूर ध्यान रखा था कि शहर और गाँवों के मध्य सन्तुलन बना रहे। अव्यवस्थित विकास से यह व्यवस्था चरमरा न उठे। संस्कृत साहित्य में इन सभी बातों के पर्याप्त स्रोत उपलब्ध हैं। इस अध्याय में उन बिन्दुओं पर चर्चा की जाएगी।

नियोजन की अवधारणा:-

शहर और गाँवों के नियोजन के सम्बन्ध में चिन्तकों ने भरपूर चिन्तन किया था और इस बात का ध्यान रखा था कि विकास के सन्दर्भ में गाँव और शहरों के मध्य समन्वय बना रहे। इस हेतु उन्होंने उस समय की राजनीति, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा था। चिन्तकों के ध्यान में यह विषय गम्भीरता से बैठा हुआ था कि मनुष्य का सर्वांगीण विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि उसका सामाजिक और आर्थिक विकास न हो। इसलिए चिन्तकों ने नियोजन को राजधर्म माना। इसलिए ही शासकों ने ग्रामीण और शहरी विकास के माध्यम से नागरिकों को बेहतर जीवन प्रदान करने के प्रयास किए। इस सम्बन्ध में उन्होंने यातायात, जनसंख्या एवं आवासीय व्यवस्थाओं पर अत्यधिक बल दिया। आधुनिक समय की तरह शहरी और ग्रामीण समस्याओं का सामना प्राचीन काल के नागरिकों को नहीं करना पड़ता था। नियोजन में तत्कालीन आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखकर विकास का प्रारूप तैयार किया जाता था। राज्यों के पास एक कार्यक्रम होता था जिसके माध्यम से वे शहर और गाँवों में जनसंख्या स्थापना के कार्यों को अंजाम देते थे। मोहनजोदड़ो हड़प्पा, कालीबंगा एवं लोथल के खण्डहर इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि उस समय का नियोजन कितना स्पष्ट हुआ करता था। रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र एवं मनुस्मृति में वर्णित शहरों के वर्णन से उनके नियोजन,

विकास एवं भव्यता का आँकलन सहजता से ही किया जा सकता है। उस समय के शहरों अयोध्या, किष्किंधा, लंका, पाटलिपुत्र, मगध, वैशाली, काशी, द्वारिका, हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ आदि के वर्णन से इस बात के प्रमाण मिल जाते हैं।

कौटिल्य लिखते हैं कि, राज्य की सीमा पर अंतफल नामक दुर्ग रक्षण के संरक्षण में एक दुर्ग की भी स्थापना करें। जनपद की सीमा पर अंतफल की अध्यक्षता में ही आधारभूत स्थानों का भी निर्माण करें। उनके भीतरी भागों की रक्षा व्याघ, शबरी, पुलिंद्र, चाण्डाल आदि वनचर जातियों के लोग करें। राजा को चाहिए कि ऋत्विक, आचार्य पुरोहित तथा श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों के लिए भूमिदान करें किन्तु उनसे कर आदि न लें और उस भूमि को वापिस भी न ले। इसी प्रकार विभागीय अध्यक्षों, संख्यायकों (लिपिकों), गोपों (दस-दस गाँवों के अधिकारियों), वैद्यों, अश्वशिक्षकों और जंघाकारियों (दूर देश में जीविकोपार्जन करने वाले लोगों) आदि अपने अधिकारियों, कर्मचारियों और प्रजाजनों के लिए भी राजा भूमि दान करें। किन्तु इस प्रकार पाई हुई जमीन को बेचने या गिरवी रखने के लिए वर्जित कर दें। कौटिल्य का मानना है कि सामाजिक सरोकारों की पूर्ति या तो राज्य कर या फिर समस्त समाज स्वयं करे, कोई भी इसमें से बचने का प्रयास करे तो समाज उसका प्रतिकार करे। राजा को चाहिए कि वह आकर (खान) से उत्पन्न सोना-चाँदी आदि के विक्रय-स्थान, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार हाथियों के जंगल, पशुओं की वृद्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के कार्य और बड़े-बड़े बाजारों या बड़ी-बड़ी मण्डियों की भी व्यवस्था करें। ऐसा करके राजा गाँवों की अर्थव्यवस्था में प्रभारी भूमिका निभा सकता है।

शहरी नियोजन:-

प्राचीन भारत में शहरी नियोजन की व्यवस्था भी अद्‌भुत थी। प्रस्तुत अध्ययन में जो वर्णन किया जा रहा है, उससे यह प्रतीत होता है कि उस समय का नियोजन कितना उच्च स्तर का था। रामायणकार लिखते हैं कि अयोध्या के चारों ओर गहरी खाई खुदी थी, जिसमें प्रवेश करना या जिसे लाँघना अत्यन्त कठिन था। वह नगरी दूसरों के लिए सर्वथा दुर्गम एवं दुर्जेय थी। घोड़े, हाथी, गाय-बैल, ऊँट तथा गधे आदि उपयोगी वस्तुओं से वह पूरी भरी-पूरी थी। यानी यह नगर भी था और सुरक्षा की दृष्टि से किले का भी आकार लिए हुए थी। इस प्रकार का समन्वय विरले ही मिलता है। आगे लिखते हैं कि ‘‘क्या तुम्हारे सभी दुर्ग (किले) धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यंत्र, शिल्पी तथा धनुर्धर सैनिकों से भरे-पूरे रहते हैं। प्राचीन भारत में नगर नियोजन कुछ मूलभूत नियमों पर आधारित था जैसे कि- मुख्य मार्गों का नियमित विकास, शहर का उपविभाजन तथा सड़कों की चौड़ाई निर्धारित करना। शहर में मंदिर, मार्ग, पैदलपथ, बाजार, बाग-बगीचे एवं मनोरंजन के विभिन्न स्थान निर्धारित थे तथा नगर में व्यवस्थित प्रवाह प्रणाली स्थापित करने के लिए परिनियम निर्धारित किए गए थे। इसके अतिरिक्त अग्नि प्रज्वलन के कारण एवं उसके शमन पर भी व्यापक रूप से विचार किया गया था। शहर को राजधानी के रूप में विकसित करने में राजा का प्रसाद केन्द्र बिन्दु था। मनु ने सुझाया कि राजा को अपनी राजधानी इस प्रकार से बनानी चाहिए जो कि चंदनाकृति, धाकृति, जलाकृति, वृक्षाकृति, पर्वताकृति हो, इन मानव-निर्मित दुर्ग में से किसी भी एक प्रकार के दुर्ग को राजा को संरक्षित कर लेना चाहिए।

कौटिल्य नगर नियोजन की अनेकानेक अवधारणाएँ प्रस्तुत करते हैं। नगर के सुदृढ़ भूमि भाग में राजभवनों का निर्माण कराना चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह भूमि चारों वर्णों की आजीविका के लिए उपयोगी हो। गृह भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवें हिस्से में अंतःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय और मंत्रियों के भवन बनवाए जाएं। अंतःपुर के पूर्व दक्षिण भाग में महानस (रसोईघर), हस्तशाला और कोष्ठागार हों। उसके आगे पूरब दिशा में इत्र, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवास स्थान होने चाहिए। दक्षिण-पूरब में भंडारागार, राजकीय पदार्थों के आय-व्यय का स्थान और सोने-चाँदी की दुकानें होनी चाहिए। उससे आगे दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापाराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवास स्थान होने चाहिए।

पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊँटों एवं गधों के गुप्ति स्थान (तबेले) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थाई घर बनवाया जाए। पश्चिम-उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि सवारियों के रखने के स्थान होने चाहिए। उसके आगे पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का काम करने वाले, हथियार और अंक म्यान बनाने वाले और शूद्र लोगों को बसाया जाना चाहिए। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने-खरीदने का बाजार और औषधालय होने चाहिए। उत्तर-पूरब में कोष-गृह और गाय-बैल तथा घोड़ों के स्थान बनवाने चाहिए। उसके आगे, उत्तर दिशा की ओर नगर देवता, कुल देवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाए जाएँ। नगर के ओर-छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे

और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाए।

प्रमुख प्राचीन शहर:-

रामायणकार ने अपनी अमरकृति रामायण में अनेकानेक शहरों का वर्णन किया है, जैसे अयोध्या, मिथिला, किष्किंधा, लंका आदि। इन शहरों का वास्तु एवं नगर नियोजन की व्यवस्थितता पढ़कर वैभव और समृद्धि तथा जीवन स्तर की उच्चता का आकलन होता है। इसी प्रकार से महाभारतकार ने महाभारत में भी मथुरा, द्वारिका, इंद्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, मगध आदि नगरों का बहुत ही रोचक एवं मनोरम वर्णन किया है, जिससे उस समय के मनुष्यों की सुरुचि का आभास होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मनुस्मृति में नगरों का तो नामोल्लेख नहीं है किन्तु नगर नियोजन किस प्रकार का होना चाहिए इस पर बहुत ही विस्तार से चर्चा की है। साथ ही नगर नियोजन की विषयवस्तु को बहुत ही वैज्ञानिक पद्धति से समझाने का प्रयास किया गया है। अपवाह प्रणाली पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है तथा सामाजिक जीवन में आमोद-प्रमोद एवं स्वास्थ्य के संसाधनों पर भी विस्तार से चर्चा की है। कौटिल्य ने अवश्य ही अपने अर्थशास्त्र में पाटलिपुत्र और अन्य नगरों के नियोजन का स्पष्ट वर्णन नहीं किया किन्तु उन्होंने रूपरेखा जरूर प्रस्तुत की है। डा॔. पृथ्वीकुमार अग्रवाल ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु में अवश्य अध्याय चार और अध्याय पाँच में नगर नियोजन पर विस्तृत प्रकाश डाला है। द्वारका के जो सेटेलाइट से चित्र उपलब्ध हो रहे हैं वे भी उसकी भव्यता का परिचय देते हैं। अवंतिका, काशी एवं अन्य नगरों का भी वर्णन प्राचीन संस्कृत साहित्य में बहुतायत से उपलब्ध है और वह भी उनकी भव्यता पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

अयोध्या:-

रामायणकार ने रामायण में अयोध्या का वर्णन कुछ यूँ किया है- वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजना चौड़ी थी। बाहर के जनपदों में जाने का जो विशाल राजमार्ग था वह उभयपार्श्व में विविध वृक्षावलियों से विभूषित होने के कारण स्पष्टतया अन्य मार्गों से विभक्त जान पड़ता था। यह राजमार्ग अयोध्या की शोभा में चार चाँद लगाने वाला था। इस राजमार्ग पर खिले हुए फूल एवं जल का भरपूर मात्रा में छिड़काव किया जाता था। अयोध्या की तुलना इंद्र की अमरावती से की जा सकती है। अयोध्या के चारों ओर बड़े-बड़े किवाड़ और फाटकों से इसको सुरक्षित किया गया था। अंदर अलग-अलग बाजारों का नियोजन था। वह पुरी सभी प्रकार से शोभायमान थी। वहाँ गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ थीं, जिनके ऊपर ध्वज फहराते थे। सैकड़ों तोपों से वह पुरी व्याप्त थी। लम्बाई और चौड़ाई की दृष्टि से बहुत ही विशाल थी तथा साखू के वनों से वह चारों ओर से घिरी हुई थी। इसके अतिरिक्त यह चारों ओर से गहरी खाइयों से घिरी थी जिसके कारण यह अनुलंघनीय थी। विभिन्न करदाता सामंत उसकी सुरक्षा सुनिश्चित किए रहते थे। व्यापार की दृष्टि से वह विभिन्न देशों के व्यापारियों का स्वागत करती थी। अयोध्या के नगर नियोजन में भी महल को केन्द्र में रखकर समस्त भवनों का विकास किया गया था।

लंका:-

लंका के विषय में भी यह वर्णन उपलब्ध है कि इस निर्माण को दानव शिरोमणि ने विश्वकर्मा से कराया था। बाद में यह कुबेर के आधिपत्य में रही तदोपरांत यह पुनः दानवों के शासन में आ गई और रावण ने अपनी रक्ष संस्कृति के प्रचार-प्रसार का केन्द्र बनाया। सुरक्षा की दृष्टि से भी यह सर्वाधिक उपयुक्त स्थान था। रामायणकार ने रामायण में इसकी अद्‌भुत सुंदरता का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है- लंका के चारों ओर गहरी खाइयाँ खुदी हुई थीं। उनमें उप्पल और पद्म आदि कई प्रजातियों के कमल खिले हुए थे। लंका की चारदीवारी सोने की थी तथा पर्वत के समान ऊँचे और शरद-ऋतु के बादलों के समान श्वेत भवनों से भरी हुई थी। सुंदरता में वह नगरी आकाश में विचरने वाली नगरी की भाँति प्रतीत होती थी। सुंदरता में उसकी तुलना कैलाश पर्वत पर बसी हुई कुबेर की नगरी अलकापुरी से की जा सकती थी।

इसमें अनेकानेक बाग-बगीचे उपवनों की रचना की गई थी। अशोक वाटिका जैसी विशाल वाटिका लंका की शोभा में चार चाँद लगाती थी। यहाँ पर भी रावण का महल केन्द्र में था और उसके चारों ओर अन्य प्रासादों का निर्माण किया गया था।

द्वारिका:-

मथुरा नगरी भी अपने समय के श्रेष्ठ नगरियों में से एक थी किन्तु परिस्थितियोंवश श्रीकृष्ण जी को उसका त्याग करना पड़ा। इसलिए उन्होंने विश्वकर्मा से एक सर्वश्रेष्ठ नगरी जिसमें जीवन से सम्बन्धित समस्त वस्तुएँ उपलब्ध हों निर्माण करने को कहा तथा उसकी सुरक्षा को भी ध्यान में रखने का आग्रह किया। विश्वकर्मा ने इन सब बातों का ध्यान रखकर द्वारिका नगरी का निर्माण किया। महाभारतकार महाभारत के ही अंश श्री हरिवंश पुराण में द्वारिकापुरी का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं- सर्वप्रथम विश्वकर्मा ने द्वारकापुरी का मानसिक निर्माण किया। (मानचित्र निर्माण कर श्रीकृष्ण की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया) बाद में उसका वास्तविक रूप तैयार किया। विश्वकर्मा ने द्वारिका के निर्माण में अपने समस्त कौशल का प्रयोग करके उसे अमरावती से भी श्रेष्ठ बना दिया। इसका निर्माण 12 योजन लम्बाई एवं 8 योजन चौड़ाई (264 मील, 96 मील) में हुआ था। इसके पूर्व में खेतपर्वत, पश्चिम में सुरक्षा, उत्तर में वेणुभत्त तथा दक्षिण में लतादेष्टा पर्वत इसकी सुरक्षा को उपस्थित थे। ये समस्त पर्वत गहन वनों से आच्छादित थे जो कि इसकी खूबसूरती और सुरक्षा को और बढ़ाने वाले थे। इसमें 50 द्वार थे। इस प्रकार से यह विशालता के साथ-साथ खूबसूरती में भी बेमिसाल थी।

पाटलिपुत्र:-

भारत की संस्कृति और सभ्यता के प्रचार-प्रसार में जितना योगदान एक लेखक के रूप में मेगास्थनीज ने किया है, इतना सम्भवतः अन्य किसी ने नहीं किया होगा। भारत में उसने जितना भी समय बिताया उसमें से अधिकांश पाटलिपुत्र में बताया। सम्भवतः जितनी व्यापक समझ वह बना पाया इतना अन्य कोई नहीं। पाटलिपुत्र के विस्तार के विषय में लिखते हैं कि यह गंगा के किनारे बसी हुई थी। इसकी लम्बाई 9 मील एवं चौ. 2 मील थी। चारों ओर खाइयाँ थीं। शहर के 64 द्वार थे और चहारदीवारी को 570 खूबसूरत मीनारों से सुसज्जित किया गया था। चंद्रगुप्त का महल अद्‌भुत घर था। ग्रीस लेखकों ने उसकी बहुत तारीफ की है। महल के साथ ही खूबसूरत पार्क था जो उसकी सुंदरता में चार चाँद लगा देता था। महल में छायादार वृक्षों की कतारें थीं जो कि आपस में गुँथी हुई थीं। ये वृक्ष सम्पूर्ण भारत और उससे बाहर से भी थे। इस कारण यहाँ एक अद्‌भुत नजारा प्रस्तुत हो गया था। इन वृक्षों पर अनेकानेक प्रकार के पक्षी चहकते रहते थे और एक-दूसरे स्थान पर पूरी स्वतंत्रता से उड़ान भर सकते थे। महल में खूबसूरत तालाब भी था जिसमें खूबसूरत मछलियाँ थीं। मछलियों का तालाब में किलोल करना एक अद्‌भुत नजारा प्रस्तुत करता था।

नगर की सफाई और नागरिकों के कर्तव्य:-

नगर और गाँवों की साफ-सफाई के लिए नागरिकों में जागरुकता अनिवार्य है। यह ठीक है कि ये समस्त कार्य किसी भी सभ्य समाज में राज्य के ही नियन्त्रण में सम्भव हों तो स्पर्धा उचित है, किन्तु राज्य अपनी भूमिका तब तक ठीक प्रकार से निर्वहन नहीं कर सकता जब तक समाज उसमें अपनी सक्रिय भूमिका नहीं निर्वहन करता। कौटिल्य इसका पालन सख्ती से कराने की वकालत करते हैं चाहे इसके लिए दंड ही क्यों न देना पड़े।

सीकरी में जल निकासी और जलापूर्ति का बेहद चौंकाने वाला और अद्‌भुत प्रबंध है। पहाड़ी के ऊपर बसे परिसरों और महलों में पानी की कमी न हो, इसके लिए सीकरी के दोनों ओर बावली बनाई गई और बेहद उम्दा प्रणाली से

पानी ऊपर तक भेजा गया। स्मार्ट शहर की अवधारणा के अनुसार इसमें सभी तबकों का ख्याल रखा गया। शिल्प को बढ़ावा देने के लिए रेशम, ऊन और सूती कपड़ों, कालीन तथा दरी के लिए कारखाने खुलवाए गए।

कौटिल्य इस सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन करते हैं कि नागरिकों को अपने कर्तव्यों का पालन किस प्रकार से करना चाहिए। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में पूरा एक अध्याय ही नागरिकों के कार्य के नाम से दिया है। वे इसमें राज्य और नागरिकों के कार्य का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं। जैसे कि समाहर्ता (अधीक्षक) की भाँति नागरिक अधिकारी भी नगर के प्रबंध की चिन्ता करे, धर्मशाला प्रबंधक को चाहिए कि वह धूर्त, पाखण्डी मुसाफिरों को गोप की अनुमति से ही टिकाए, किन्तु जिन तपस्वियों या श्रोत्रियों को वह स्वयं जानता है, उन्हें अपनी जिम्मेदारी पर भी टिका सकता है। इसी तरह, जान पहचान के कारीगरों को व्यवसाई अपने यहाँ ठहरा सकता था किन्तु देश काल के विपरीत आचरण करने वाले व्यक्ति की सूचना तुरंत नागरिक को देनी होती थी। यह व्यवस्था थी कि मध्य-माँस बेचने वाले, होटल वाले और वेश्याएं अपने-अपने परिचितों को अपने घर ठहरा सकते हैं किन्तु यदि कोई अपनी हैसियत से अधिक खर्चे तो उसकी सूचना तुरंत स्थानिक को दी जावे। इसी तरह कौटिल्य ने कहा कि गलियों तथा बाजारों में और चौराहों, नगर के प्रधान द्वारों, खजानों कोष्ठागारों, गजशालाओं और अश्वशालाओं में पानी से भरे हुए एक हजार घड़ों का हर समय प्रबंध रहना चाहिए। वहीं सड़क पर मिट्टी या कूड़ा-करकट डालने वाले व्यक्ति को पण का आठवाँ हिस्सा (1/8 पण) दण्ड दिया जाना चाहिए। जो व्यक्ति गाड़ी, कीचड़ या पानी से सड़क को रोके उसे 1/4 पण दण्ड दिया जाना चाहिए। जो व्यक्ति राजमार्ग को इस प्रकार गंदा करे या रोके उसे दुगुना दण्ड दिया जाना चाहिए।

मध्य/आधुनिक काल में शहरी नियोजन:-

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह ध्यान में आता है कि भारत में पर्याप्त लम्बे समय तक प्राचीन स्थापत्य कला का प्रभाव रहा और यह कला प्रायः भारत के परिवेश के अनुरूप ही विकसित हुई तथा इस पर संस्कृत एवं संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, किन्तु 12वीं सदी ने विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण में तेजी आने के बाद इसमें परिवर्तन आने प्रारम्भ हुए। ये परिवर्तन उत्तर से दक्षिण और पश्चिम से पूर्व तक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। यह वह कालखंड है जिसमें संस्कृति और सम्यतागत स्थापत्य कला का विकास तेजी से हुआ है।

मध्यकाल में अधिकांशतः भारतवर्ष में मुगलवंश का शासन रहा। इस दौरान नगरों की प्रमुख विशिष्टता उनके अंदर महल, किलों एवं इबादतगाहों आदि ईमारतों के रूप में दिखती है। मुगलकाल के स्थापत्य ने दैनंदिन जीवन के स्थापत्य को प्रायः प्रभावित नहीं किया। जन सामान्य के आवास परम्परागत दृष्टिकोण से निर्माण करने का अभ्यास रहा। किले, इबादतगाह, सुरंग महल आदि पर मुगल स्थापत्य कला का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ध्यान से देखने पर यह भी समझ में आता है कि इस काल में जो किले और महल बने हैं उन पर निर्माण सामग्री और स्थापत्य को छोड़कर शेष स्वरूप भारतीय भवन निर्माण कला वाला ही रहा है। यथा- दिल्ली का किला, आगरा स्थित सिकंदरा तथा फतेहपुर सीकरी आदि-आदि। हाँ, यह अवश्य परिलक्षित होता है कि जो स्मारक इन्होंने अपने सम्बन्धियों की यादगार में निर्मित करवाए, जरूर मुगल स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने प्रतीत होते हैं और स्थापत्य पर भी मुस्लिम कारीगरों की छाप दिखती है यथा-आगरा स्थित एतमाउद्दौला, सिकंदरा स्थित मरियम टांम्ब, दिल्ली स्थित सफदरजंग का मकबरा, हुमायुं का मकबरा आदि-आदि।

जब भी स्मार्ट शहर यानी बुद्धिमत्ता के साथ बनाए गए सुनियोजित शहर की बात की जाती है तो प्राचीन काल की कई नगरी हमारे ध्यान में आती हैं। अंग्रेजों के आने के बाद भी कई शहर सुनियोजित ढंग से बसाए गए और स्मार्ट सिटी परियोजना के तहत भी इसे आगे बढ़ाया जा रहा है। मध्यकाल के स्मार्ट शहरों के बारे में बात कम ही होती है, जबकि वास्तव में वे शहर ही स्मार्ट सिटी की अवधारणा के सबसे करीब आते हैं। भारत में फतेहपुर सीकरी, पुड्डुचेरी और जयपुर आदि ऐसे ही शहर हैं। आगे हम इन शहरों के बारे में एक-एक कर देखेंगे।

फतेहपुर सीकरी:-

सीकरी भारत में मध्यकाल का पहला सुनियोजित या स्मार्ट शहर था। इसकी बुनियाद 1571 में अरावली पर्वत श्रेणी के

ऊपरी हिस्से में एक बड़ी झील के किनारे रखी गई थी। शहर को बसाने का काम बाबर के पौत्र अकबर ने किया, जिन्होंने अपनी राजधानी आगरा से हटाकर सीकरी बनाई और 13 साल तक यहीं से राज काज किया। वास्तव में यह मुगलों का पहला स्मार्ट शहर है। इसमें ढलवां पहाड़ियों पर तीन मुख्य परिसर बनाए गए। सबसे ऊपरी परिसर में जामा मस्जिद, बुलंद दरवाजा और शेख सलीच चिश्ती की दरगाह है। बीच के परिसर में शाही दरबार, रनिवास, शाही बाजार और मीना बाजार आदि बने। सबसे निचले परिसर में अनूप तालाब, पंचमहल, ख्वाबगाह बनाए गए। तीनों परिसर उत्तर से दक्षिण दिशा में इस तरह बनाए गए कि उनका मुँह पूर्व अथवा उत्तर की ओर ही है। तीनों सीध में इस तरह बनाए गए कि गर्मी से बचाने के लिए उनके बीच पर्याप्त जगह है। इसके साथ ही यहाँ इमारतें बनाने के लिए लाल पत्थर का इस्तेमाल हुआ, जो ठंडा रहता है। सीकरी की इमारतों में मुगल स्थापत्य से अधिक भारतीय स्थापत्य का प्रभाव दिखता है और छज्जों, झरोखों तथा छतरियों वाली कुछ इमारतें तो मंदिर जैसी दिखती हैं।

सीकरी में जल निकासी और जलापूर्ति का बेहद चौंकाने वाला और अद्भुत प्रबंध है। पहाड़ी के ऊपर बसे परिसरों और महलों में पानी की कमी न हो, इसके लिए सीकरी के दोनों ओर बावली बनाई गई और बेहद उम्दा प्रणाली से पानी ऊपर तक भेजा गया। स्मार्ट शहर की अवधारणा के अनुसार इसमें सभी तबकों का ख्याल रखा गया। शिल्प को बढ़ावा देने के लिए रेशम, ऊन और सूती कपड़ों, कालीन तथा दरी के लिए कारखाने खुलवाए गए। सोने, चाँदी, जेवरात, चमड़े लकड़ी के शिल्पकारों के साथ ही इत्र बनाने के कारखाने भी सीकरी में खोले गए, जिससे पड़ोस के शहर आगरा के साथ यह व्यापार का केन्द्र बना।

पुड्डुचेरी:-

सुदूर दक्षिण में पुड्डुचेरी मध्यकाल में दूसरा स्मार्ट भारतीय शहर है। इसे फ्रांसीसी उपनिवेश के प्रमुख शहर के तौर पर 1674 में बसाया गया था। इसे फ्रांस तथा भारत की स्थापत्य कला का मेल बताया जाता है। लेकिन वास्तव में इस शहर का मूल नक्शा फ्रांसीसियों से भी पहले हॉलैंड से आए डच व्यापारियों और शासकों ने तैयार किया, जो आज भी बरकरार है। इस शहर का नक्शा तैयार करने वाले डच वास्तुकार जैकब वर्बरगोम्स ने इसे आयताकार ब्लाकों में बाँटा, जिनके बीच में सीधी सड़कें थीं और ये सड़कें समकोण पर एक दूसरे को काटती हुई चौराहे बनाती थीं। चूँकि डच व्यापारी थे, इसलिए वे इस शहर को व्यापार का प्रमुख केन्द्र बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने शहर में प्रत्येक व्यावसायिक समुदाय के रहने के क्षेत्र सुनिश्चित किए। शहर इतना सुनियोजित था कि प्रत्येक जाति और व्यवसाय की गलियाँ तय थीं यानी बुनकरों, व्यापारियों, किसानों, दस्तकारों और ब्राह्मणों की अलग-अलग गलियाँ थीं। इतना ही नहीं वहाँ श्वेत समुदाय और अश्वेत अर्थात भारतीय समुदाय के रहने के स्थान भी अलग-अलग थे।

जयपुर:-

गुलाबी नगरी के नाम से मशहूर जयपुर भी करीब 300 साल पहले बसाया गया स्मार्ट शहर है। इसकी बुनियाद 1727 में महाराजा सवाई सिंह द्वितीय ने रखी थी। उनकी राजधानी आमेर में थी, लेकिन बहुत ऊँचाई पर बसे होने के कारण वहाँ आवागमन में परेशानी होती थी और पानी की किल्लत से जूझना पड़ता था। इसीलिए उन्होंने 11 किलोमीटर दूर जयपुर को बसाया। वास्तव में जयपुर पूरी तरह भारतीय शैली वाला पहला ऐसा शहर है, जिसका बाकायदा नक्शा बनाया गया। शहर की डिजाइन का जिम्मा विद्वान बंगाली ब्राह्मण विद्याधर भट्टाचार्य को सौंपा गया। भट्टाचार्य ने हिंदू रीति के अनुसार भवन निर्माण के नियम तय करने वाले प्राचीनतम ग्रंथ 'शिल्प शास्त्र' के आधार पर इस शहर का खाका तैयार किया। उन्होंने शहर को 9 आयताकार ब्लॉकों में बाँटा, जिनमें 7 ब्लॉक सामान्य जनता के लिए और बाकी 2 ब्लॉक महल तथा प्रशासनिक इमारतों के लिए रखे गए। सुरक्षा की दृष्टि से पूरे शहर को ऊँची दीवारों से घेरा गया और 7 प्रवेश द्वार बनाए गए। शिल्प शास्त्र और वास्तुकला के नियमों के अनुसार शहर में सड़कें और चौक बने। मुख्य सड़कों के अलावा प्रत्येक ब्लॉक में भी सड़कों का जाल बुन दिया गया। खास बात है कि उस समय भी जयपुर में प्रत्येक सड़क खूब चौड़ी बनाई गई थी ताकि भविष्य में भी आवागमन में दिक्कत न हो। विभिन्न प्रकार के बाज़ार भी जयपुर में बसाए गए। वास्तु का इतना अधिक ध्यान रखा गया है कि आज भी जयपुर की सभी सड़कों और बाजारों का

रुख पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण है। दुनिया के शायद किसी भी शहर में बाजार इतने व्यवस्थित नहीं दिखेंगे, जितने जयपुर में हैं। यहाँ झालानियों का रास्ता, ठठेरों का रास्ता, खजाने वालों का रास्ता, हल्दियों का रास्ता, जौहरी बाजार, त्रिपालिया बाजार आदि पारम्परिक बाजारों का ही संकेत करते हैं, जो शहर को बसाते वक्त बनाए गए थे।

मद्रास में बसावट और पृथक्करण:-

कंपनी ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों का केंद्र सबसे पहले पश्चिमी तट पर सूरत के सुस्थापित बंदरगाह को बनाया था। बाद में वस्त्र उत्पादों की खोज में अंग्रेज व्यापारी पूर्वी तट पर जा पहुँचे। 1639 में उन्होंने मद्रासपटम में एक व्यापारिक चौकी बनाई। इस बस्ती को स्थानीय लोग चेनापट्टनम कहते थे। कंपनी ने वहाँ बसने का अधिकार स्थानीय तेलुगू सामंतों, कालाहस्ती के नायको से ख़रीदा था जो अपने इलाके मे व्यापारिक गतिविधिया को बढ़ाना चाहते थे। फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ प्रतिद्वंद्विता ;1746-63 के कारण अंग्रेजों को मद्रास की किलेबंदी करनी पड़ी और अपने प्रतिनिधियों को ज्यादा राजनीतिक व प्रशासकीय जिम्मेदारियाँ सौंप दीं। 1761 में फ़्रांसीसियों की हार के बाद मद्रास और सुरक्षित हो गया। वह एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक शहर के रूप में विकसित होने लगा।

फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज ; सेंट जॉर्ज किला व्हाइट टाउन का केंद्रक बन गया जहाँ ज्यादातर यूरोपीय रहते थे। दीवारों और बुर्जो ने इसे एक खास किस्म की घेरेबंदी का रूप दे दिया था। किले के भीतर रहने का फ़ौसला रंग और धर्म के आधार पर किया जाता था। कंपनी के लोगों को भारतीयों के साथ विवाह करने की इजाजत नहीं थी। यूरोपीय ईसाई होने के कारण डच और पुर्तगालियों को वहाँ रहने की छूट थी। प्रशासकीय और न्यायिक व्यवस्था की संरचना भी गोरों के पक्ष में थी। संख्या की दृष्टि से कम होते हुए भी यूरोपीय लोग शासक थे और मद्रास का विकास शहर में रहने वाले मुठ्ठी भर गोरों की जरूरतों और सुविधओं के हिसाब से किया जा रहा था। ब्लैक टाउन किले के बाहर विकसित हुआ। इस आबादी को भी सीधी कतारों में बसाया गया था जोकि औपनिवेशिक शहरों की विशिष्टता थी।
लेकिन अठारहवीं सदी के पहले दशक के मध्य में उसे ढहा दिया गया ताकि किले के चारों तरफ़ एक सुरक्षा क्षेत्र बनाया जा सके। इसके बाद उत्तर की दिशा में दूर जाकर एक नया ब्लैक टाउन बसाया गया। इस बस्ती में बुनकरों, कारीगरों, बिचौलियों और दुभाषियों को रखा गया था जो कंपनी के व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। नया ब्लैक टाउन परंपरागत भारतीय शहरों जैसा था। वहाँ मंदिर और बाजार के इर्द-गिर्द रिहाइशी मकान बनाए गये थे। शहर के बीच से गुजरने वाली आड़ी-टेढ़ी संकरी गलियों में अलग-अलग जातियों के मोहल्ले थे। चिन्ताद्रीपेठ इलाका केवल बुनकरों के लिए था। वाशरमेनपेट में रंगसाज और धोबी रहते थे। रोयापुरम में ईसाई मल्लाह रहते थे जो कंपनी के लिए काम करते थे। मद्रास को बहुत सारे गाँवों को मिला कर विकसित किया गया था। यहाँ विविध् समुदायों के लिए अवसरों और स्थानों का प्रबंध् था। नाना प्रकार के आर्थिक कार्य करने वाले कई समुदाय आए और मद्रास में ही बस गए। दुबाश ऐसे भारतीय लोग थे जो स्थानीय भाषा और अंग्रेजी, दोनों को बोलना जानते थे। वे एजेंट और व्यापारी के रूप में काम करते थे और भारतीय समाज व गोरों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे। वे संपत्ति इकट्ठा करने के लिए सरकार में अपनी पहुँच का इस्तेमाल करते थे। ब्लैक टाउन में परोपकारी कार्यों और मंदिरों को संरक्षण प्रदान करने से समाज में उनकी शक्तिशाली स्थिति स्थापित होती थी।

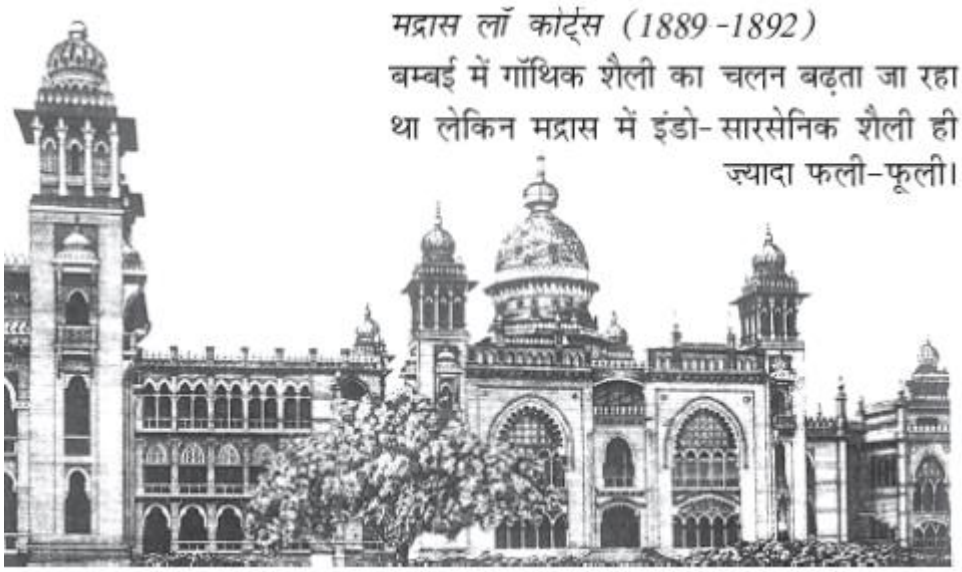

शुरुआत में कंपनी के तहत नौकरी पाने वालों में लगभग सारे वेल्लालार होते थे। यह एक स्थानीय ग्रामीण जाति थी जिसने ब्रिटिश शासन के कारण मिले नए मौकों का बढ़िया फायदा उठाया। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से ब्राह्मण भी शासकीय महकमों में इसी तरह के पदों के लिए जोर लगाने लगे। तेलुगू कोमाटी समुदाय एक ताकतवर व्यावसायिक समूह था जिसका शहर के अनाज व्यवसाय पर नियंत्रण था। अठाहरवीं सदी से गुजराती बैंकर भी यहाँ मौजूद थे। पेरियार और वन्नियार गरीब कामगार वर्ग में ज्यादा थे। आरकोट के नवाब पास ही स्थित ट्रिप्लीकेन में जा बसे थे जो एक अच्छी-खासी मुस्लिम आबादी का केंद्र बन गया। इससे पहले माइलापुर और ट्रिप्लीकेन हिंदू धर्मिक केंद्र थे जहाँ अनेक ब्राह्मणों को भरण-पोषण मिलता था। सान थोम और वहाँ का गिरजा रोमन केथलिक समुदाय का केंद्र था। ये सभी बस्तियाँ मद्रास शहर का हिस्सा बन गईं।

इस प्रकार, बहुत सारे गाँवों को मिला लेने से मद्रास दूर तक फैली अल्प सघन आबादी वाला शहर बन गया। इस बात पर यूरोपीय यात्रियों काभी ध्यान गया और सरकारी अफ़सरों ने भी उस पर टिप्पणी की। जैसे-जैसे अंग्रेजों की सत्ता मजबूत होती गई, यूरोपीय निवासी किले से बाहर जाने लगे। गार्डन हाउसेज ;बगीचों वाले मकानद्ध सबसे पहले माउंट रोड और पूनामाली रोड, इन दो सड़कों पर बनने शुरू हुए। ये किले से छावनी तक जाने वाली सड़कें थीं। इस दौरान संपन्न भारतीय भी अंग्रेजों की तरह रहने लगे थे। परिणामस्वरूप मद्रास के इर्द-गिर्द स्थित गाँवों की जगह बहुत सारे नए उपशहरी इलाकों ने ले ली। यह इसलिए संभव था क्योंकि संपन्न लोग परिवहन सुविधओं की लागत वहन कर सकते थे। गरीब लोग अपने काम की जगह से नजदीक पड़ने वाले गाँवों में बस गए। मद्रास के बढ़ते शहरीकरण का परिणाम यह था कि इन गाँवों के बीच वाले इलाव्क़ो शहर के भीतर आ गए। इस तरह मद्रास एक अर्ध्ग्रामीण सा शहर दिखने लगा।

कलकत्ता में नगर नियोजन:-

आधुनिक नगर नियोजन की शुरुआत औपनिवेशिक शहरों से हुई। इस प्रक्रिया में भूमि उपयोग और भवन निर्माण के नियमन के जरिए शहर के स्वरूप को परिभाषित किया गया। इसका एक मतलब यह था कि शहरों में लोगों के जीवन को सरकार ने नियंत्रित करना शुरू कर दिया था। इसके लिए एक योजना तैयार करना और पूरी शहरी परिधि का स्वरूप तैयार करना जरूरी था। यह प्रक्रिया अकसर इस सोच से प्रेरित होती थी कि शहर केसा दिखना चाहिए और उसे कैसे विकसित किया जाएगा। इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि विभिन्न स्थानों को कैसे व्यवस्थित करना चाहिए। इस दृष्टि से फ्विकास की सोच और विचारधारा प्रतिबिम्बित होती थी और उसका क्रियान्वयन जमीन, उसके बाशिंदों और संसाधिनों पर नियंत्रण के जरिए किया जाता था। इसकी कई वजह थीं कि अंग्रेजों ने बंगाल में अपने शासन के शुरू से ही नगर नियोजन का कार्यभार अपने हाथों में क्यों ले लिया था। एक वजह तो रक्षा उद्देश्यों से संबंधित थी।

1756 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर हमला किया और अंग्रेज व्यापारियों द्वारा माल गोदाम के तौर पर बनाए गए छोटे किले पर कब्जा कर लिया। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारी नवाब की संप्रभुता पर

लगातार सवाल उठा रहे थे। वे न तो कस्टम ड्यूटी चुकाना चाहते थे और न ही नवाब द्वारा तय की गई कारोबार की शर्तो पर काम करना चाहते थे। सिराजुद्दौला अपनी ताकत का लोहा मनवाना चाहता था। कुछ समय बाद, 1757 में प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की हार हुई। इसके बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक ऐसा नया किला बनाने का फ़ैसला लिया जिस पर आसानी से हमला न किया जा सके।

कलकत्ता में एक सड़क पर चलती ट्राम गाड़ियाँ।

कलकत्ता को सुतानाती, कोलकाता और गोविंदपुर, इन तीन गाँवों को मिला कर बनाया गया था। कंपनी ने इन तीनों में सबसे दक्षिण में पड़ने वाले गोविंदपुर गाँव की जमीन को साफ करने के लिए वहाँ के व्यापारियों और बुनकरों को हटने का आदेश जारी कर दिया। नवनिर्मित फ़ोर्ट-विलियम के इर्द-गिर्द एक विशाल जगह खाली छोड़ दी गई जिसे स्थानीय लोग मैदान या गारेर-मठ कहने लगे थे। खाली मैदान रखने का मकसद यह था कि अगर दुश्मन की सेना किले की तरफ़ बढ़े तो उस पर किले से बेरोक-टोक गोलीबारी की जा सके। जब अंग्रेजों को कलकत्ता में अपनी उपस्थिति स्थायी दिखाई देने लगी तो वे फ़ोर्ट से बाहर मैदान के किनारे पर भी आवासीय इमारतें बनाने लगे। कलकत्ता में अंग्रेजों की बस्तियाँ इसी तरह अस्तित्व में आनी शुरू हुईं। फ़ोर्ट के इर्द-गिर्द की विशाल खुली जगह ;जो अभी भी मौजूद हैद्ध यहाँ की एक पहचान बन गई। यह कलकत्ता में नगर – नियोजन की दृष्टि से पहला उल्लेखनीय काम था।

कलकत्ता में नगर-नियोजन का इतिहास केवल फ़ोर्ट विलियम और मैदान के निर्माण के साथ पूरा होने वाला नहीं था। 1798 में लॉर्ड वेलेजली गवर्नर जनरल बने। उन्होंने कलकत्ता में अपने लिए गवर्नमेंट हाउस के नाम से एक महल बनवाया। यह इमारत अंग्रेजों की सत्ता का प्रतीक थी। कलकत्ता में आ जमने के बाद वेलेजली शहर के हिन्दुस्तानी आबादी वाले हिस्से की भीड़-भाड़, जरूरत से ज्यादा हरियाली, गंदे तालाबों, सड़ांध निकासी की ख़स्ता हालत को देखकर परेशान हो उठा। अंग्रेजों को इन चीजों से इसलिए परेशानी थी क्योंकि उनका मानना था कि दलदली जमीन और ठहरे हुए पानी के तालाबों से जहरीली गैसें निकलती हैं जिनसे बीमारियाँ फैलती हैं। उष्णकटिबंध्यी जलवायु को वैसे भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक और शक्ति का क्षय करने वाला माना जाता था। शहर को ज्यादा स्वास्थ्यपरक बनाने का एक तरीका यह ढूँढ़ा गया कि शहर में खुले स्थान छोड़े जाएँ।

वेलेजली ने 1803 में नगर-नियोजन की आवश्यकता पर एक प्रशासकीय आदेश जारी किया और इस विषय में कई कमेटियों का गठन किया। बहुत सारे बाजारों, घाटों, कब्रिस्तानों और चर्मशोधन इकाइयों को साफ़ किया गया या हटा दिया गया। इसके बाद जनस्वास्थ्य एक ऐसा विचार बन गया जिसकी शहरों की सफ़ाई और नगर-नियोजन परियोजनाओं में बार-बार दुहाई दी जाने लगी। वेलेजली की विदाई के बाद नगर-नियोजन का काम सरकार की मदद से लॉटरी कमेटी ;1817 ने जारी रखा। लॉटरी कमेटी का यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि नगर सुधार के लिए पैसे की व्यवस्था जनता के बीच लॉटरी बेचकर ही की जाती थी।

इसका मतलब है कि उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दशकों तक शहर के विकास के लिए पैसे की व्यवस्था करना अभी भी केवल सरकार की नहीं बल्कि संवेदनशील नागरिकों की जिम्मेदारी ही माना जाता था। लॉटरी कमेटी ने शहर का एक नया न-क्शा बनवाया जिससे कलकत्ता की एक मुकम्मल तसवीर सामने आ सके। कमेटी की प्रमुख गतिविधियों में शहर के हिंदुस्तानी आबादी वाले हिस्से में सड़क-निर्माण और नदी किनारे से अवैध् कब्जे हटाना शामिल था। शहर के भारतीय हिस्से को साफ़-सुथरा बनाने की मुहिम में कमेटी ने बहुत सारी झोंपड़ियों को साफ़ कर दिया और मेहनतकश ग़रीबों को वहाँ से बाहर निकाल दिया। उन्हें कलकत्ता के बाहरी किनारे पर जगह दी गई।

अगले कुछ दशकों में महामारी की आशंका से नगर-नियोजन की अवधारणा को और बल मिला। 1817 में हैजा फैलने लगा और 1896 में प्लेग ने शहर को अपनी चपेट में ले लिया। चिकित्सा विज्ञान अभी इन बीमारियों की वजह स्पष्ट नहीं कर पाया था। सरकार ने उस समय के स्वीकृत सिद्धांत — जीवन परिस्थितियों और बीमारियों के फैलाव के बीच सीध संबंध होता है — के अनुसार कार्रवाई की। इस सोच को द्वारकानाथ टैगोर और रूस्तमजी कोवासजी जैसे शहर के जाने-माने हिंदुस्तानियों का समर्थन हासिल था। उन लोगों का मानना था कि कलकत्ता को और ज्यादा स्वास्थ्यकर बनाना जरूरी है। घनी आबादी वाले इलाकों को अस्वच्छ माना जाता था क्योंकि वहाँ सूरज की रोशनी सीधे नहीं आ पाती थी और हवा निकासी का इन्तजाम नहीं था। इसीलिए कामकाजी लोगों की झोंपड़ियों या बस्तियों को निशाना बनाया गया। उन्हें तेजी से हटाया जाने लगा। मजदूर, फैरी वाले, कारीगर और बेरोजगार, यानी शहर के गरीबों को एक बार फिर दूर वाले इलाकों में ढकेल दिया गया। बार-बार आग लगने से भी निर्माण नियमन में सख़्ती की जरूरत दिखाई दे रही थी। उदाहरण के लिए, 1836 में इसी आशंका के चलते पूँफस की झोंपड़ियों को अवैध् घोषित कर दिया गया और मकानों में इटो की छत को अनिवार्य बना दिया गया।

उन्नीसवीं सदी आते-आते शहर में सरकारी दखलंदाजी और ज्यादा सख्त हो चुकी थी। वो जमाना लद चुका था जब नगर-नियोजन को सरकार और निवासियों, दोनों की साझा जिम्मेदारी माना जाता था। वित्तपोषण सहित नगर-नियोजन के सारे आयामों को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। इस आधार पर और ज्यादा तेजी से झुग्गियों को हटाया जाने लगा और दूसरे इलाकों की कीमत पर ब्रिटिश आबादी वाले हिस्सों को तेजी से विकसित किया जाने लगा। स्वास्थकर और अस्वास्थ्यकर के नए विभेद के सहारे व्हाइट और ब्लैक टाउन वाले नस्ली विभाजन को और बल मिला। नगर निगम में मौजूद भारतीय नुमाइंदों ने शहर के यूरोपीय आबादी वाले इलाकों के विकास पर जरूरत से ज्यादा ध्यान दिए जाने का विरोध् किया।

इन सरकारी नीतियों के विरुद्ध जनता के प्रतिरोध् ने भारतीयों के भीतर उपनिवेशवाद विरोधी और राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा दिया। जैसे-जैसे ब्रिटिश साम्राज्य फैला, अंग्रेज कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे शहरों को शानदार शाही राजधानियों में तब्दील करने की कोशिश करने लगे। उनकी सोच से ऐसा लगता था मानो शहरों की भव्यता से ही शाही सत्ता की ताकत प्रतिबिंबित होती है। आधुनिक नगर-नियोजन में ऐसी हर चीज को शामिल किया गया जिसके प्रति अंग्रेज अपनेपन का दावा करते थे : तर्कसंगत क्रम-व्यवस्था, सटीक क्रियान्वयन, पश्चिमी सौंदर्यात्मक आदर्श। शहरों का साफ़ और व्यवस्थित, नियोजित और सुंदर होना जरूरी था।

विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन, एफ़. डब्ल्यू. स्टीवन्स द्वारा बनाया गया डिज़ाइन

बम्बई में भवन निर्माण:-

यदि इस शाही दृष्टि को साकार करने का एक तरीका नगर-नियाजन था तो दूसरा तरीका यह था कि शहरों में भव्य इमारतों के मोती टाँक दिए जाएँ। शहरों में बनने वाली इमारतों में किले, सरकारी दफ़्तर, शैक्षणिक संस्थान, धर्मिक इमारतें, स्मारकीय मीनारें, व्यावसायिक डिपो, यहाँ तक कि गोदियाँ और फल, कुछ भी हो सकता था। बुनियादी तौर पर ये इमारतें रक्षा, प्रशासन और वाणिज्य जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं, लेकिन ये साधरण इमारतें नहीं थीं। अकसर ये इमारतें शाही सत्ता, राष्ट्रवाद और धर्मिक वैभव जैसे विचारों का प्रतिनिधित्व भी करती थीं। आइए देखें कि बम्बई में इस सोच को अमली जामा किस तरह पहनाया गया। शुरुआत में बम्बई सात टापुओं का इलाका था। जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, इन टापुओं को एक-दूसरे से जोड़ दिया गया ताकि ज्यादा जगह पैदा की जा सके। इस तरह आखिरकार ये टापू एक-दूसरे से जुड़ गए और एक विशाल शहर अस्तित्व में आया।

बम्बई औपनिवेशिक भारत की वाणिज्यिक राजधानी थी। पश्चिमी तट पर एक प्रमुख बंदरगाह होने के नाते यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का केंद्र था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारत का आधा निर्यात और आयात बम्बई से ही होता था। इस व्यापार की एक महत्वपूर्ण वस्तु अफ़ीम थी। ईस्ट इंडिया कंपनी यहाँ से चीन को अफीम का निर्यात करती थी। भारतीय व्यापारी और बिचौलिये इस व्यापार में हिस्सेदार थे और उन्होंने बम्बई की अर्थव्यवस्था को मालवा, राजस्थान और सिंध् जैसे अफीम उत्पादक इलाकों से जोड़ने में मदद दी। कंपनी के साथ यह गठजोड़ उनके लिए मुनाफै का सौदा था और इससे भारतीय पूँजीपति वर्ग का विकास हुआ। बम्बई के पूँजीपति वर्ग में पारसी, मारवाड़ी, कोंकणी मुसलमान, गुजराती बनिये, बोहरा, यहूदी और आर्मीनियाई, विभिन्न समुदायों के लोग शामिल थे।

जैसा कि हम जानते है ; जब 1861 में अमेरिकी गृह युद्ध शुरू हुआ तो अमेरिका के दक्षिणी भाग से आने वाली कपास अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आना बंद हो गई। इससे भारतीय कपास की माँग पैदा हुई जिसकी खेती मुख्य रूप से दक्कन में की जाती थी। भारतीय व्यापारियों और बिचौलियों के लिए यह बेहिसाब मुनाफ़े का मौका था। 1869 में स्वेज नहर को खोला गया जिससे विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बम्बई के संबंध् और मजबूत हुए। बम्बई सरकार और भारतीय व्यापारियों ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बम्बई को भारत का सरताज शहर घोषित कर दिया।

Chanda Rani
E-Mail ID:- chandarani911@gmail.com

चित्र द्वारा विजय मित्र

बम्बई का टाउन हॉल जिसमें अब ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बॉम्बे का दफ़्तर है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक बम्बई में भारतीय व्यापारी कॉटन मिल जैसे नए उद्योगों में अपना पैसा लगा रहे थे। निर्माण गतिविधियों में भी उनका काफ़ी दखल रहता था। जैसे-जैसे बम्बई की अर्थव्यवस्था फैली, उन्नीसवीं सदी के मध्य से रेलवे और जहाजरानी के विस्तार तथा प्रशासकीय संरचना विकसित करने की जरूरत भी पैदा होने लगी। उस समय बहुत सारी नयी इमारतें बनाई गईं। इन इमारतों में शासकों की संस्कृति और आत्मविश्वास झलकता था। इनकी स्थापत्य या वास्तु शैली यूरोपीय शैली पर आधारित थी। यूरोपीय शैलियों के इस आयात में शाही दृष्टि कई तरह से दिखाई देती थी। पहली बात, इसमें एक अजनबी देश में जाना-पहचाना सा भूदृश्य रचने की और उपनिवेश में भी घर जैसा महसूस करने की अंग्रेजों की चाह प्रतिबिंबित होती है। दूसरा, अंग्रेजों को लगता था कि यूरोपीय शैली उनकी श्रेष्ठता, अधिकार और सत्ता का प्रतीक होगी। तीसरा, वे सोचते थे कि यूरोपीय ढंग की दिखने वाली इमारतों से औपनिवेशिक स्वामियों और भारतीय प्रजा के बीच फ़र्क और फ़ासला साफ़ दिखने लगेगा।

शुरुआत में ये इमारतें परंपरागत भारतीय इमारतों के मुकाबले अजीब सी दिखाई देती थीं। लेकिन धीरे-धीरे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैली के आदि हो गए और उन्होंने इसे अपना लिया। दूसरी तरफ़ अंग्रेजों ने अपनी जरूरतों के मुताबिक कुछ भारतीय शैलियों को अपना लिया। इसकी एक मिसाल उन बंगलों को माना जा सकता है जिन्हें बम्बई और पूरे देश में सरकारी अफ़सरों के लिए बनाया जाता था। इनके लिए अंग्रेजी का ठनदहसवू शब्द बंगाल के 'बंगला' शब्द से निकला है जो एक परंपरागत फ़ूस की बनी झोंपड़ी होती थी। अंग्रेजों ने उसे अपनी जरूरतों के हिसाब से बदल लिया था। औपनिवेशिक बंगला एक बड़ी जमीन पर बना होता था। उसमें रहने वालों को न केवल प्राइवेसी मिलती थी बल्कि उनके और भारतीय जगत के बीच फ़ासला भी स्पष्ट हो जाता था। परंपरागत ढलवाँ छत और चारों तरफ़ बना बरामदा बंगले को ठंडा रखता था। बंगले के परिसर में घरेलू नौकरों के लिए अलग से क्वार्टर होते थे। सिविल लाइन्स में बने इस तरह के बंगले एक खालिस नस्ली गढ़ बन गए थे जिनमें शासक वर्ग भारतीयों के साथ रोजाना सामाजिक सम्बन्धों के बिना आत्मनिर्भर जीवन जी सकते थे।

सार्वजनिक भवनों के लिए मौटे तौर पर तीन स्थापत्य शैलियों का प्रयोग किया गया। दो शैलियाँ उस समय इंग्लैंड में प्रचलित चलन से आयातित थीं। इनमें से एक शैली को नवशास्त्रीय या नियोक्लासिकल शैली कहा जाता था। बड़े-बड़े स्तंभों के पीछे रेखागणितीय संरचनाओं का निर्माण इस शैली की विशेषता थी। यह शैली मूल रूप से प्राचीन रोम की भवन निर्माण शैली से निकली थी जिसे यूरोपीय पुनर्जागरण के दौरान पुनर्जीवित, संशोधित और लोकप्रिय किया गया। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए उसे खास तौर से अनुकूल माना जाता था। अंग्रेजों को लगता था कि जिस शैली में शाही रोम की भव्यता दिखाई देती थी उसे शाही भारत के वैभव की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इस स्थापत्य शैली के भूमध्यसागरीय उद्गम के कारण

उसे उष्णकटिबंध्यी मौसम के अनुकूल भी माना गया। 1833 में बम्बई का टाउन हॉल इसी शैली के अनुसार बनाया गया था। 1860 के दशक में सूती कपड़ा उद्योग की तेजी के समय बनाई गयी बहुत सारी व्यावसायिक इमारतों के समहू का एलफ़िस्टन सर्कल कहा जाता था। बाद मे इसका नाम बदलकर हॉर्निमान सर्कल रख दिया गया था। यह नाम भारतीय राष्ट्रवादियों की हिमायत करने वाले एक अंग्रेज संपादक के नाम पर पड़ा था। यह इमारत इटली की इमारतों से प्रेरित थी। इसमें पहली मंजिल पर ढके हुए तोरणपथ का रचनात्मक ढंग से इस्तेमाल किया गया। दुकानदारों व पैदल चलने वालों को तेज धूप और बरसात से बचाने के लिए यह सुधार काफी उपयागी था।

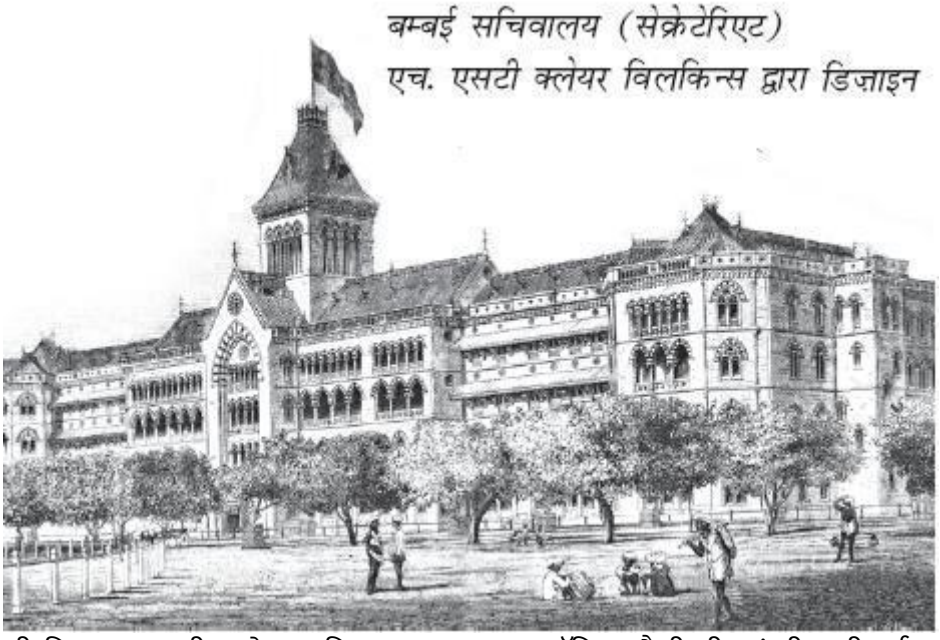

एक और शैली जिसका काफ़ी इस्तेमाल किया गया वह नव-गॉथिक शैली थी। ऊंची उठी हुई छतें, नोकदार मेहराबें और बारीक साज-सज्जा इस शैली की खासियत होती है। गॉथिक शैली का जन्म इमारतों, खासतौर से गिरजों से हुआ था जो मध्यकाल में उत्तरी यूरोप में काफ़ी बनाए गए। नव-गॉथिक शैली को इंग्लैंड में उन्नीसवीं सदी के मध्य में दोबारा अपनाया गया। यह वही समय था जब बम्बई में सरकार बुनियादी ढाँचे का निर्माण कर रही थी। उसके लिए यही शैली चुनी गई। सचिवालय, बम्बई विश्वविद्यालय और उच्च न्यायालय जैसी कई शानदार इमारतें समुद्र किनारे इसी शैली में बनाई गईं। इनमें से कुछ इमारतों के लिए भारतीयों ने पैसा दिया था। यूनिवर्सिटी हॉल के लिए सर कोवासजी जहाँगीर रेडीमनी ने पैसा दिया था जो एक अमीर पारसी व्यापारी थे। यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के घंटाघर का निर्माण प्रेमचंद रॉयचंद के पैसे से किया गया था और इसका नाम उनकी माँ के नाम पर राजाबाई टावर रखा गया था। भारतीय व्यापारियों को नव-गॉथिक शैली इसलिए रास आती थी क्योंकि उनका मानना था कि अंग्रेजों द्वारा लाए गए बहुत सारे विचारों की तरह उनकी भवन निर्माण शैलियाँ भी प्रगतिशील थीं और उनके कारण बम्बई को एक आधुनिक शहर बनाने में मदद मिलेगी। लेकिन नव-गॉथिक शैली का सबसे बेहतरीन उदाहरण विक्टोरिया टर्मिनल्स है जो ग्रेट इंडियन पेनिन्स्युलर रेलवे कंपनी का स्टेशन और मुख्यालय हुआ करता था।

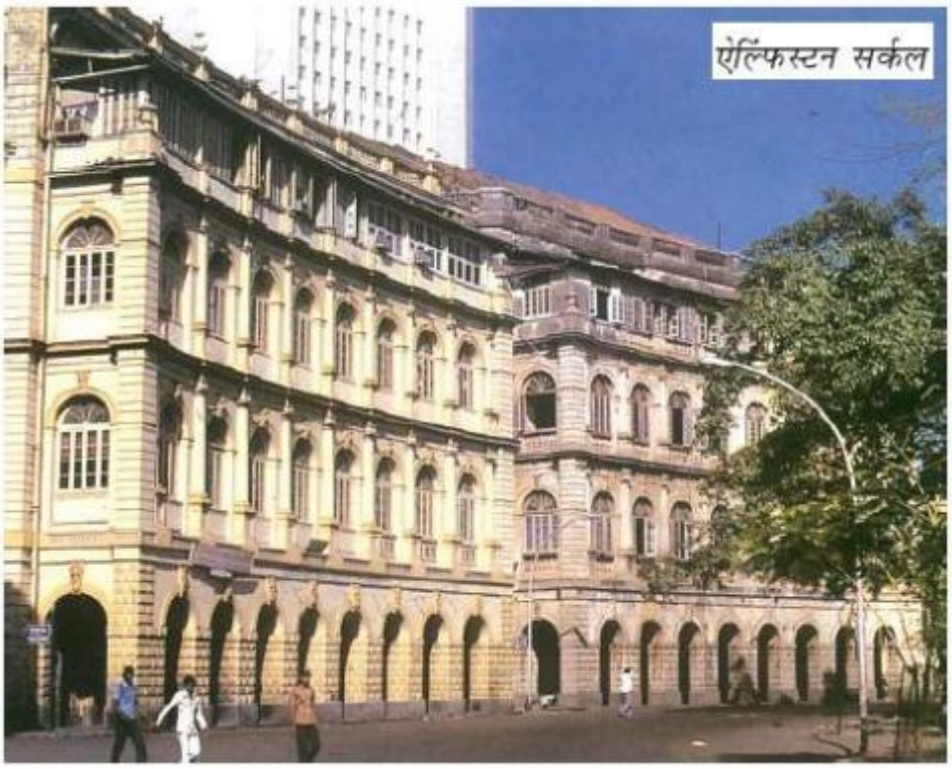

अंग्रेजों ने शहरों में रेलवे स्टेशनों के डिजाइन और निर्माण में काफ़ी निवेश किया था क्योंकि वे एक अखिल भारतीय रेलवे नेटवर्क के सफल निर्माण को अपनी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानते थे। मध्य बम्बई के आसमान पर इन्हीं इमारतों का दबदबा था और उनकी नव-गॉथिक शैली शहर को एक विशिष्ट चरित्र प्रदान करती थी। बीसवीं सदी की शुरुआत में एक नयी मिश्रित स्थापत्य शैली विकसित हुई जिसमें भारतीय और यूरोपीय, दोनों तरह की शैलियों के तत्व थे। इस शैली को इंडो-सारासेनिक शैली का नाम दिया गया था। इंडो शब्द हिन्दू का संक्षिप्त रूप था जबकि सारासेन शब्द का यूरोप के लोग मुसलमानों को संबोधित करने के लिए इस्तेमाल करते थे। यहाँ की मध्यकालीन इमारतों – गुम्बदों, छतरियों, जालियों, मेहराबों – से यह शैली काफ़ी प्रभावित थी। सार्वजनिक वास्तु शिल्प में भारतीय शैलियों का समावेश करके अंग्रेज यह साबित करना चाहते थे कि वे यहाँ के स्वाभाविक शासक हैं।

राजा जॉर्ज पंचम और उनकी पत्नी मेरी के स्वागत के लिए 1911 में गेटवे ऑफ़ इंडिया बनाया गया। यह परंपरागत गुजराती शैली का प्रसिद्ध उदाहरण है। उद्योगपति जमशेदजी टाटा ने इसी शैली में ताजमहल होटल बनवाया था। यह इमारत न केवल भारतीय उद्यमशीलता का प्रतीक थी बल्कि अंग्रेजों के स्वामित्व और नियंत्रण वाले नस्ली क्लबों और होटलों के लिए एक चुनौती भी थी। बम्बई के ज़्यादा भारतीय इलाकों में सजावट एवं भवन-निर्माण और साज-सज्जा में परंपरागत शैलियों का ही बोलबाला था। शहर में जगह की कमी और भीड़-भाड़ की वजह से बम्बई में खास तरह की इमारतें भी सामने आईं जिन्हें चॉल का नाम दिया गया। ये बहुमंजिला इमारतें होती थीं जिनमें एक-एक कमरे वाली आवासीय इकाइयाँ बनाई जाती थीं। इमारत के सारे कमरों के सामने एक खुला बरामदा या गलियारा होता था और बीच में दालान होता था। इस तरह की इमारतों में बहुत थोड़ी जगह में बहुत सारे परिवार रहते थे जिससे उनमें रहने वालों के बीच मोहल्ले की पहचान और एकजुटता का भाव पैदा हुआ।

इमारतें और स्थापत्य शैलियाँ क्या बताती हैं?

स्थापत्य शैलियों से अपने समय के सौंदर्यात्मक आदर्शों और उनमें निहित विविधताओं का पता चलता है। लेकिन, जैसा कि हमने देखा, इमारतें उन लोगों की सोच और नजर के बारे में भी बताती हैं जो उन्हें बना रहे थे। इमारतों के जरिए सभी शासक अपनी ताकत का इजहार करना चाहते हैं। इस प्रकार एक खास व-क्त की स्थापत्य शैली को देखकर हम यह समझ सकते हैं कि उस समय सत्ता को किस तरह देखा जा रहा था और वह इमारतों और उनकी विशिष्टताओं – इर्ट-पत्थर, खम्भे और मेहराब, आसमान छूते गुम्बद या उभरी हुई छतें

– के जरिए किस प्रकार अभिव्यक्त होती थी। स्थापत्य शैलियों से केवल प्रचलित रुचियों का ही पता नहीं चलता। वे उनको बदलती भी हैं। वे नयी शैलियों को लोकप्रियता प्रदान करती हैं और संस्कृति की रूपरेखा तय करती हैं।

जैसा कि हमने देखा, बहुत सारे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैलियों को आधुनिकता व सभ्यता का प्रतीक मानते हुए उन्हें अपनाने लगे थे। लेकिन इस बारे में सबकी राय एक जैसी नहीं थी। बहुत सारे भारतीयों को यूरोपीय आदर्शो से आपत्ति थी और उन्होंने देशी शैलियों को बचाए रखने का प्रयास किया। बहुतों ने पश्चिम के कुछ ऐसे खास तत्वों को अपना लिया जो उन्हें आधुनिक दिखाई देते थे और उन्हें स्थानीय परंपराओं के तत्वों में समाहित कर दिया। उन्नीसवीं सदी के आखिर से हमें औपनिवेशिक आदर्शो से भिन्न क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अभिरुचियों को परिभाषित करने के प्रयास दिखाई देते हैं। इस तरह सांस्कृतिक टकराव की वृहद प्रक्रियाओं के जरिए विभिन्न शैलियाँ बदलती और विकसित होती गईं। इसलिए स्थापत्य शैलियों को देखकर हम इस बात को भी समझ सकते हैं कि शाही और राष्ट्रीय, तथा राष्ट्रीय और क्षेत्रीय/स्थानीय के बीच सांस्कृतिक टकराव और राजनीतिक खींचतान किस तरह शक्ल ले रही थी।

सन्दर्भ

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2/1/4, चौखंबा प्रकाशन
2. कौ. अर्थशास्त्र, 2/1/5, चौखंबा प्रकाशन
3. वा.रा. बालकांड, 5/13, गीताप्रेस, गोरखपुर
4. वा.रा. अयोध्याकांड, 100/53, गीताप्रेस गोरखपुर
5. महा. सभापर्व, 31/74, 38/30, गीता प्रेस गोरखपुर
6. मनुस्मृति, 7/70
7. कौ. अर्थशास्त्र, दुर्गनिवेशः 2/4/3-1-2-3-9, पृ.-91-93, चौखंबा प्रकाशन
8. वा.रा.-सुंदरकांड, 19-23
9. हरिवंशपुराण, 58वां अध्याय 45-50
10. नरायण सिंह समोता India as described by Megasthomas, Delhi 1978 पृ.- 61-62
11. कौ. अर्थशास्त्र, 2/35/3, चौखंबा प्रकाशन